International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 1; Issue 4; April 2016; Page No. 80-81

अग्निपुराण में रीति विषयक अनुप्रयोग

अमित कुमार

शोधछात्र (पीएच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

ऋग्वेद में रीति पद का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ हैं। यहाँ इसका अर्थ गमन या मार्ग है। यथा – "महावरीतिः शवसा सरत्, पृथक्", "वातेवाजुर्या नद्येव रीतिः", "तामस्यरीतिपरशोरिव" स्थलों में रीति पद का प्रयोग गति, धारा और मार्ग के अर्थ में हुआ है।

काव्य में रीति या मार्ग के प्रयोग का आरम्भ पहले युग में भौगोलिक विशेषताओं के कारण प्रवर्तित हुआ था। प्राचीन आचार्यों का कथन है विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले आचार्य अपने प्रदेश की शैली में काव्य की रचना करते थे। यथा गौड़ प्रदेश में रहने वाले लेखक समास बहुल गौड़ी शैली में और विदर्भ प्रदेश में रहने वाले लेखक समासरहित वैदर्भी शैली में काव्य की रचना किया करते थे। इस कारण ये शैलियाँ इन प्रदेशों के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। परन्तु उत्तरवर्ती युग में ये शैलियाँ किसी विशेष देश से सम्बन्धित न रह कर कवि की निजी प्रवृत्तियों से सम्बन्धित हो गई। पदसंघटना के लिए सबसे पहले भरत ने प्रवृत्ति पद का प्रयोग किया था। भरत के अनुसार – 'चतुर्विद्या प्रवृत्तिश्च प्रोद्रा नाट्य–प्रयोगतः। आवन्ती दाक्षिवात्या च पांचाली चौड्ग नगरी' जो कि विभिन्न प्रदेशों या भूभागों से सम्बन्धित थी। भरत ने ही सर्वप्रथम काव्यगत गुणों का प्रतिपादन किया था जिनके आधार पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने रीति के विशाल प्रासाद की रचना की।

रीति का प्रथम विशद निर्देश भामह और दण्डी ने किया इन्होंने रीति के लिए मार्ग पद का प्रयोग किया। आचार्य भामह ने वैदर्भी एवं गौड़ी दो रीतियों का वर्णन किया है। उनके अनुसार अलंकारयुक्त, ग्राम्यदोष से रहित, अर्थवान, औचित्यपूर्ण गौड़ीय मार्ग उत्तम है। अलंकारों की सत्ता होने पर वैदर्भ मार्ग भी श्रेष्ठ है किन्तु अलंकारों के अभाव में दोनों मार्ग त्याज्य हैं।

अलंकारवदग्राम्यं अर्थ्यं न्यायमानाकुलम्।
गौडीयमपिसाधीर्योवैदर्भ मितिनान्यथा।।

काव्यालंकार (भामह) 1/35

दण्डी के अनुसार सूक्ष्म भेद के कारण काव्य रचना के मार्ग अनन्त हैं–

अस्त्यनेको गिरां मार्गःसूक्ष्मभेदः परस्परम्।

काव्यादर्श 1/40

परन्तु मुख्य मार्ग दो है, जिनके भेदों की गणना नहीं की जा सकती। प्रत्येक कवि का अलग मार्ग होता है।[1] सरस्वती भी इन मार्गों की गणना नहीं कर सकती।[2] दण्डी के समय में इन मार्गों का भौगोलिक महत्त्व विद्यमान था।

रीति तत्त्व का साङ्गोपाङ्ग विवेचन वामन ने किया और इसको काव्य की आत्मा प्रतिपादित किया। 'विशिष्टा पदसंघटना रीतिः। विशेषो गुणात्मा' इस प्रकार रीति का लक्षण देकर वामन ने पदों की संघटना में गुणों की विशेषता को निहित करके इस तत्त्व की व्याख्या की। वामन ने रीति और गुणों का नित्य संबंध स्थापित करके रस आदि का भी इनमें समावेश कर लिया। वामन ने गुणों की संख्या 20 निर्धारित की। गुणों के नाम तो प्राचीन आचार्यों के ही रहे परन्तु उनको 10 शब्दगुण और 10 अर्थगुण कहकर संख्या 20 कर दी गई।

वामन से पूर्व काव्य की रचना के दो मार्ग कहे गये थे – वैदर्भ और गौड़ परन्तु वामन ने एक तीसरे मार्ग पांचाल का भी प्रतिपादन किया। इस प्रकार रीतियों की संख्या तीन हो गई– वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। इन रीतियों में भिन्नता गुणों के भेद तथा उनकी संख्या के अल्प या अधिक होने से होती है।

रीति के इतिहास में रुद्रट का प्रमुख स्थान है। वे पहले आचार्य हैं, जिन्होंने रीति को भौगोलिक बन्धनों से सर्वथा मुक्त करके काव्य व्यवहार की परम्परा में संयोजित किया। इन्होंने वामन की तीन रीतियों में एक अन्य रीति लाटी को भी जोड़ा। रुद्रट ने एक कार्य और भी किया कि रसों का भी रीतियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया और रसौचित्य के अनुसार रीतियों के संयोजन की व्यवस्था दी।

रुद्रट ने रीतियों का विभाजन समास के आधार पर किया। उनके अनुसार समास से रहित रचना वैदर्भी रीति, दो तीन पदों के समास वाली रचना पांचाली रीति, पाँच या सात पदों के समास वाली रचना लाटी रीति और समास बहुल रचना गौड़ी रीति हैं।[3]

रुद्रट ने यह भी प्रतिपादित किया था कि मधुर और सुकुमार रसों–शृंगार, प्रेय, करुण, भयानक और अद्भुत रसों का निवेशन वैदर्भी और पांचाली रीति में किया जाता है। कठोर और ओज–प्रधान रसों–रौद्र आदि का निवेशन लाटी एवं गौड़ी रीति में किया जाना चाहिये।[4]

इन सभी आचार्यों का प्रभाव अग्निपुराण में प्रतिपादित रीतियों पर दृष्टिगोचर होता है अग्निपुराण में रीति का लक्षण करते हुए कहा गया हैं–

वाग्विद्या संप्रति ज्ञाने रीतिः साऽपि चतुर्विधा।

अ.पु. 340/9

---

[1] इति मार्गद्वय भिन्न तत्स्वरूपनिरूपणात।
तदभेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिक विस्थिताः।। काव्यादर्श 1/101

[2] श्लेष प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता। अर्थव्यक्तिरुद्रास्वभोजः कान्तिः समाधयः।।
इति वैदर्भ मार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः। एषां विपर्यय प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि।। काव्यादर्श 1/41/42

[3] वृत्तेरसमासाया वैदर्भी रीतिरेकैव।
पांचाली भाटीया गौडीया चेति नामतोऽभिहिता।
लघुमध्यायत विरचनसमासभेददिमास्तत्र।।
द्वित्रिपदा पांचाली लाटीया पंचसप्त वा यावत्।
शब्दाः समासवन्तो भवति यथाशक्ति गौडीया।। रुद्रट काव्यालंकार 2/4/5

[4] इह वैदर्भी रीतिः पांचाली या विचार्य रचनीया। मधुरा ललिते कविना कार्ये वृत्ती तु शृंगारे।। रुद्रट काव्यालंकार वैदर्भी पांचाली प्रेयसि करुणे भयानकाद्भुतयोः। लाटीयगौडीये रौद्रे कुर्याद् यथौचित्यम्। रुद्रट काव्यालंकार 15/20

अर्थात् वाग्विद्या का सम्यक् ज्ञान कराने की शैली रीति हैं।
उपर्युक्त वर्णित सभी आचार्यों में से सर्वाधिक प्रभाव रुद्रट का पड़ा है। जैसे रुद्रट ने रीतियों का रसों के साथ संबंध प्रतिपादित किया है वैसे ही अग्निपुराण में भी रीति वर्णन रस के साथ किया हैं। इन्होंने वामन की तीन रीतियों में एक अन्य रीति 'लाटी' को भी जोड़ा।[5] इस प्रकार रीतियाँ चार हैं – पांचाली, गौड़ी, वैदर्भी व लाटी।

वाग्विधा संप्रति ज्ञाने रीतिः साऽपि चतुर्विधा।
पांचाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा।।

अ.पु. 340/1

अग्निपुराणकार ने चारों रीतियों का पृथक्–पृथक् स्वरूप निर्दिष्ट किया है। उन्होंने रीति का व्यापक अर्थ लेते हुए उसे समास, अलंकार आदि से सम्बद्ध किया है। अग्निपुराण के अनुसार रीतियों के लक्षण इस प्रकार है –

1. **पांचाली रीति –** इस रीति में भाषा कोमल, छोटे–छोटे समास से युक्त एवं अलंकृत होनी चाहिए। उपचारयुता मृद्वी पांचाली ह्रस्वविग्रहा।
2. **गौड़ी रीति –** अनवस्थित संदर्भ वाली अर्थात् जिसमें विविध संदर्भ हो तथा बड़े–बड़े समास से युक्त 'गौड़ी' रीति होती हैं। अनवस्थित संदर्भा गौड़ीया दीर्घविग्रहा।
3. **वैदर्भी रीति –** अधिक अलंकृत भाषा से रहित, कोमल सन्दर्भों वाली और समास से रहित 'वैदर्भी' रीति कही जाती है।

   उपचारैर्न बहुभिरूपचारै विवर्जिता।
   नातिकोमलसंदर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा।।

4. **लाटी रीति –** स्पष्ट सन्दर्भों वाली, अस्पष्ट समास वाली तथा सीधे–सरल वाक्य वाली रचना 'लाटी' रीति वाली होती है।

   लाटीया स्फुटसन्दर्भा नातिविस्फुरविग्रहा।
   परित्यक्ताऽभिभूयोऽपिरूपचारैरुदाहृता।।

उपसंहार

अग्निपुराण चार रीतियों को मानता है परन्तु वामन के अनुसार रीतियाँ तीन हैं – वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। वामन के अनुसार गुण ही काव्य के सौन्दर्य के प्रतिपादक है। अलंकार तो काव्य की शोभा का अतिशय करने वाले हैं। इस प्रकार वामन गुण विशिष्ट रीति को अंगी तथा अलंकारों को उसका उत्कर्ष करने वाले अंग मानते हैं।
अग्निपुराण अलंकारवादी ग्रन्थ है जो अलंकारों को काव्यात्मा के रूप में मानता है। अग्निपुराण में काव्य के शोभाकर धर्मों का अलंकार कहा है।[6] और वामन के गुण के लक्षण में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार अग्निपुराण के अलंकार काव्य के प्रमुख तत्त्व है उसी प्रकार वामन के गुण काव्य के प्रमुख तत्त्व है। इस प्रकार अग्निपुराण ने गुणों की अपेक्षा अलंकारों को काव्य में अधिक महत्त्व दिया और अलंकारों को प्रमुख तत्त्व बना दिया। अग्निपुराण में अलंकार काव्य की आत्मा है, अन्तस्तत्त्व है, एवं गुण बाह्य तत्त्व हो गये हैं। इस प्रकार अग्निपुराण में गुण काव्य की आत्मा अलंकार के अंगरूप होते हैं। पुनरपि अग्निपुराण का गुण–विवेचन काव्य शास्त्र परम्परा का नवीन मार्ग प्रशस्त करता हुआ विभिन्न तथ्यों को प्रकट करता है।

[5] पांचाली लाटीया गौडीयाचेतिनामतोऽभिहिताः।
लघुम ध्यायतविरचन समासभेदादिमास्तत्र।। काव्यालंकार (रुद्रट) 2/4

[6] काव्यशोभायाः कर्त्तारोधर्मा गुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा।। अग्निपुराण 1/61

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काणे, पी.वी., 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966.
2. डे, सुशील कुमार, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, बिहार, 1973.
3. कीथ, ए.बी., 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988.
4. उपाध्याय, बलदेव, 'भारतीय साहित्य–शास्त्र', प्रसाद परिषद काशी, द्वितीय संस्करण, 2012.
5. सैनी, सुनीता, 'अग्निपुराण में विविध विधाएँ', अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, 2004.
6. कुमार, कृष्ण, 'अलंकार शास्त्र का इतिहास', साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975.
7. गैरोला, वाचस्पति, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991.
8. पोद्दार, सेठ कन्हैयालाल, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1997.
9. उपाध्याय, बलदेव, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', शारदा मन्दिर, बनारस, 1987.
10. नागेन्द्र, 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973.
11. अवस्थी, श्री एवं पाण्डे, विश्वनाथ, 'पुराण पर्यालोचन', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1975.
12. उपाध्याय, बलदेव, 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास', उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1977.